मुस्लिम शासन पर बहस

डॉ. शंकर शरण

भारत में मुस्लिम शासन पर एक बहस
तारिक फतह बनाम जावेद अख्तर

'यथावत' पत्रिका
16-31 मई 2020

तारिक फतह बनाम जावेद अख्तर

(भारत में मुस्लिम शासन पर बहस)

छः सौ साल में दर्जनों मुस्लिम शासकों में बस एक अकबर का नाम लेकर 'सामासिक संस्कृति' और 'सामंजस्य' की कहानी गढ़ना भी असलियत दर्शाता है। यह असलियत कि बाकी के दर्जनों मुस्लिम सुलतानों, शासकों, ने जो किया, उस में दिखाने लायक कुछ भी नहीं है!



शंकर शरण

कुछ समय से दो बड़े मुस्लिम बौद्धिकों में वाक्-युद्ध चल रहा है। फिल्मी लेखक जावेद अख्तर और कनाडियन-पाकिस्तान विद्वान तारिक फतह। तारिक फतह पाकिस्तानी हैं, मगर अपने को महान भारतीय विरासत का वारिस मानते हैं। जावेद अख्तर भारतीय हैं, कम्युनिस्ट परंपरा वाले। अपने को नास्तिक कहते हैं, किन्तु इस्लामियों से अधिक हिन्दूवादियों पर त्यौरी चढ़ाते हैं। वस्तुतः, इसी बिन्दु पर उन्होंने अपनी ओर से तारिक फतह पर हमला बोल दिया, कि वे अपनी बातों से 'विश्व हिन्दू परिषद' के प्रवक्ता जैसे लगते हैं। तारिक खुद बेलाग बोलने वाले तर्रार हैं, उन की भी कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि है। उन्होंने फौरन भारत में ऐतिहासिक इस्लामी अत्याचारों को गिनाते हुए हिन्दुओं की दुर्दशा पर कम्युनिस्टों की चुप्पी, और दोहरेपन पर चोट की।

यह दोनों तरफ से ट्विटर पर कई दिनों से चल रहा है। एक दिन एक हिन्दी समाचार चैनल ने दोनों को ऑन-लाइन निमंत्रित करके बहस भी कराई। वह भी इंटरनेट पर उपलब्ध है। दोनों की बातें कोई स्वयं देख सकता है। उस में जावेद ज्यादातर तारिक पर व्यक्तिगत चोट करते मिलते हैं, जिस से उन्होंने शुरू भी किया था। आखिर, वे कह सकते थे कि तारिक की कौन सी बात गलत है? पर उन्होंने शुरूआत ही की तारिक को हिन्दूवादियों का टट्टू जैसा कहने से। जबकि इस आरोप से कुछ पता नहीं चलता कि तारिक ने कोई गलतबयानी की, या वि.हि.प. के किसी गलत काम का बचाव किया। बस, एक लांछन

लगाकर जावेद ने अपने को बड़ा तीरंदाज समझ लिया।

यह दिखाता है कि भारतीय वामपंथी अपनी गाली-गलौज वाली सीमित किताब से आगे आज तक कुछ सीख नहीं पाए! उन के पास भिन्न विचार वाले विद्वानों के लिए भी गाली के सिवा कोई प्रतिवाद नहीं होता। एक पूर्व-कम्युनिस्ट, और प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिका 'सेमिनार' की संपादक राज थापर ने कितना सच लिखा थाः ''मार्क्सवादी चश्मों से गहरे आच्छादित अपनी आँखों से हम यह सब देख ही कैसे सकते थे- हमारे दृष्टिकोण के अनुसार हमारे देश के नेता 'दौड़ते हुए कुत्ते', 'गंदे जानवर', 'नीच गुलाम' थे। आह, कम्युनिस्टों के पास कितना सीमित शब्द-भंडार था। यह निश्चय ही अत्यंत भुखमरे मस्तिष्क को प्रतिबिम्बित करता था, जिसका पोषण निरंतर समीकरणों के सूखे भोजन पर किया गया था, उन समीकरणों पर जिसे गलती से वैज्ञानिक कहा जाता था।''

जावेद अख्तर उसी 'भुखमरे मस्तिष्क' की झलक देते हैं, जब तारिक फतेह जैसे कद्दावर और साहसी विद्वान को गालियों से निपटाना चाहते हैं। जबकि तारिक ने सैद्धांतिक, ठोस बातें रखी हैं। उनका कहना है कि भारत में मुसलमानों ने भारत की महान ज्ञान-विरासत से अपने को कभी नहीं जोड़ा। वे अपने नाम तक अरबी रखते हैं, उन अरबी कबीलों के नाम पर जिन से उन का कभी कोई संबंध नहीं रहा। अगर रहा भी, तो यही कि उन अरबी कबीलों के हमलावरों ने इन भारतीय मुसलमानों के पूर्वजों को मार कर, अपमानित, बलात्कृत कर इस्लाम कबूलने के लिए मजबूर किया।

इसी तरह, भारतीय मुसलमान अपने देश की भाषाओं के बजाए अरबी-फारसी-तुर्की से लगाव रखने के आदी रहे हैं। भारत में बनी भाषा उर्दू को भी यहां की नागरी लिपि में न रखकर अरबी लिपि में रखने की जिद रखते हैं। फिर, इस भाषा को बंगाल, पंजाबी, कश्मीरी, तेलेगु आदि बोलने वाले मुसलमानों पर जबरन थोप कर उनकी मूल भाषाओं को अपमानित या खत्म करते हैं। तारिक के अनुसार, पाकिस्तान दुनिया का एकमात्र देश है, जहां उसकी अपनी भाषाएं प्रतिबंधित हैं। वहां पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, आदि सभी जगहों पर केवल उर्दू पढ़ी-पढ़ाई जाती है। लाहौर के पुस्तक मेलों में पंजाबी भाषा की कोई पुस्तक नहीं होती। पाकिस्तानी जेलों में भी उर्दू-भाषी कैदी ऊँचे दर्ज में रहता है, जबकि पंजाबी, सिंधी, बलूची भाषा-भाषी कैदियों को नीचा दर्जा मिलता है।

सत्रह वर्ष की आयु में जब तारिक जेल गए थे, तो माता-पिता की भाषा पंजाबी होने के कारण इन्हें निचला दर्जा मिला। वहां उन्होंने कैदियों से पंजाबी सीखी! तारिक इस पर क्षोभ से भर उठते हैं कि पाकिस्तान में अपनी मातृभाषा चोर-बदमाशों, अपराधियों से सीखनी पड़ती है!

पंजाब के सबसे महान मुस्लिम कवि बुल्लेशाह हुए हैं। मगर पाकिस्तानी पंजाब में पिछले सत्तर वर्षों में किसी बच्चे का नाम बुल्लेशाह नहीं रखा गया! यह उस देश की विडंबना है, जो भारत से नफरत करता है, मगर यहीं के आगरा-लखनऊ की भाषा उर्दू को अपने ऊपर लादे हुए है। पाकिस्तान में कोई पंजाबी सीखना चाहे तो माता-पिता डांटते हैं कि 'तुझे क्या इसीलिए पढ़ा रहे हैं कि तू पंजाबी बोले?'। प्रसिद्ध शायर फैज अहमद 'फैज' पंजाब के ही थे, मगर उन्होंने पंजाबी में कभी कुछ न लिखा!

तारिक के अनुसार भारतीय हिन्दू नेता भी 'टू-नेशन थ्योरी' से जान-बूझ कर आँखे चुराते हैं। जो वह शुद्ध हिन्दू-विरोध का सिद्धांत था, जिससे पाकिस्तान का जन्म था। जिससे आज भी पाकिस्तान चल रहा है, और भारत के भी बहुतेरे मुस्लिम नेता चल रहे हैं। इसके पीछे मूल भावना यह थी और है कि मुसलमान हिन्दुओं के साथ बराबरी से नहीं रह सकते। तारिक ने शुरू से ही मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के लिए 'भूखा बंगाली', 'गंदा हिन्दू' और 'कायर, लालची बनिया' जैसी संज्ञाएं ही सुनी हैं। पाकिस्तानी दिमाग में भरा हुआ है कि हिन्दुओं पर मुसलमानों ने शासन किया है, और फिर करेंगे। यही भारत में भी कई मुसलमान नेताओं की भावना है जो वे सार्वजनिक रूप से भी बोलते रहते हैं। यही सब बातें बोलने के अपराध में जावेद अख्तर तारिक फतह को हिन्दूवादियों का टट्टू कह रहे हैं।

जहां तक संविधान के अनुच्छेद 14 में दिए गए 'समानता के अधिकार' के उल्लंघन का सवाल है, इसी अनुच्छेद के तहत राज्य को यह भी अधिकार है कि किसी वर्ग विशेष के उत्थान के लिए वह एक 'क्लास' पैदा कर सकती है और उसे अलग सुविधाएं दे सकती है, बशर्ते उस क्लास को बनाने का आधार तार्किक हो और कानून उस लक्ष्य को हासिल करता हो।

जावेद अख्तर को तारिक की उन बातों पर कुछ नहीं कहना है। या तो वे चुप्पी रखते हैं, या उसकी कोई मधुर व्याख्या करके दरकिनार करते हैं। उनका अपना जोर, मार्क्सवादियों द्वारा गढी गई 'गंगा-जमुनी सभ्यता' या 'सामासिक संस्कृति' जुमले पर है। वे इसी को भारत की पहचान मानते हैं। जिस में मुगलों, मुस्लिम शासकों ने भी योगदान दिया था। जावेद भारत में मुगल शासन को खुशहाली का समय मानते हैं। उस की तुलना करते हुए वे अकबर, जहांगीर को महान, जबकि अंग्रेजों को गया-गुजरा बताते हैं। मुख्यतः इसी बिन्दु पर वे अपना वैचारिक हमला तारिक फतह और हिन्दूवादियों पर कर रहे हैं।

इसलिए, जावेद अख्तर द्वारा इस पुराने वामपंथी प्रोपगंडा को तनिक विस्तार से देखना जरूरी है। क्योंकि भारत में विगत पचास सालों से हिन्दू-विरोधी राजनीति की बुनियाद ठीक इसी लाइन पर रखी गई है। कि भारत में अंग्रेजों से पहले से मुस्लिम शासकों को विदेशी, या हमलावर, अत्याचारी, आदि न कहा जाए। यदि कहना ही पड़े, तो साथ में हिन्दू राजाओं को भी उन्हीं चीजों का दोषी बताया जाए। ऐसा न करने वाले हिन्दू सांप्रदायिक या नासमझ हैं।

दुर्भाग्य की बात तो यह है कि इस प्रपंच की शुरूआत महात्मा गाँधी ने की थी। उन से पहले भारत में हिन्दू और मुसलमान विद्वानों, नेताओं, या आम जन में इस पर कोई विवाद या प्रपंच नहीं था। जो मुस्लिम मुगल काल पर गर्व करते थे, वे उसी गर्व से यह भी कहते थे कि हिन्दुओं को गुलामी में रखा गया था। उसी तरह, जिन हिन्दू नेताओं, लेखकों, समाज-सुधारकों का मुसलमानों के साथ उठना-बैठना था, वे भी मुगल काल को हिन्दुओं पर अत्याचार का काल मानते थे। दोनों की भावनाओं में अंतर था, किन्तु तथ्यों पर विवाद न था। इसे गाँधीजी ने लीप-पोत कर सामाजिक सद्भाव बढ़ाने

की कल्पना की। जबकि, इस से ठीक उल्टा हुआ! मुसलमानों, और फिर कम्युनिस्टों को भी एक नया हथियार मिल गया। उन्होंने इतिहास का मिथ्याकरण करने, और तमाम इस्लामी शासकों, कारनामों को हिन्दुओं द्वारा आदर देने की मांग की। उसी का अगला क्रम यह बना कि चूंकि मुसलमान यहां शासक थे, इसीलिए सहज बात यह है कि आज भी वे शासक रहेंगे। बराबरी नहीं स्वीकार करेंगे। इसलिए, या तो मुसलमानों को सत्ता दो, या पाकिस्तान दो। कहना चाहिए, कि वही राजनीति स्वतंत्र भारत में भी चल रही है। हर चीज में शरीयत का हवाला देना एक राजनीतिक माँग है। इस से हिन्दू नेता नासमझ प्रतीत होते हैं और गाँधीजी की तरह इस्लामी दबाव के सामने बेबस दिखते हैं।

इसका एक मात्र उपाय सच्चा इतिहास बेबाक सामने रखकर हिन्दुओं और मुसलमानों से विवेक पूर्ण विचार करने की अपील है। जबकि वास्तविकता की लीपा-पोती केवल इस्लामियों का घमंड बढ़ाती है, कि उन की दबंगई से हिन्दू डरते हैं। पहले भी और आज भी। इस मानसिकता का उपाय केवल सत्य के सहारे हो सकता है, चालबाजी से नहीं। उसमें इस्लामी नेता सदैव दस हाथ आगे रहेंगे, और हिन्दू मारे जाएंगे।

इसलिए, यह नोट करने की बात है कि मुगल काल को गौरव-काल बताना स्वतंत्र भारत में अधिक प्रचारित हुआ। केंद्र में कांग्रेस-कम्युनिस्ट सत्ता गंठजोड़ ने राजकीय बल से इस प्रपंच को स्कूल-कॉलेजों तक फैला दिया। हमारे नेताओं ने अपनी कई पीढ़ियों से सच छिपाने और झूठ फैलाने का गंदा काम किया, करवाया है। इसी का दूरगामी असर अब हर कहीं दिखता है। जावेद अख्तर इसी दम पर सीनाजोरी कर रहे हैं।

ब्रिटिश राज से क्रूर था मुगल शासन

सच्चाई यह है कि भारत में मुगल शासन भी ब्रिटिश शासन जैसा विदेशी था। कई मामलों में ब्रिटिश राज से अधिक क्रूर और घृणित। स्वयं मुगलों के समय मुसलमानों द्वारा ही लिखी गई सैकड़ों किताबें, शासकीय दस्तावेज, आदि इसकी गवाही हैं।

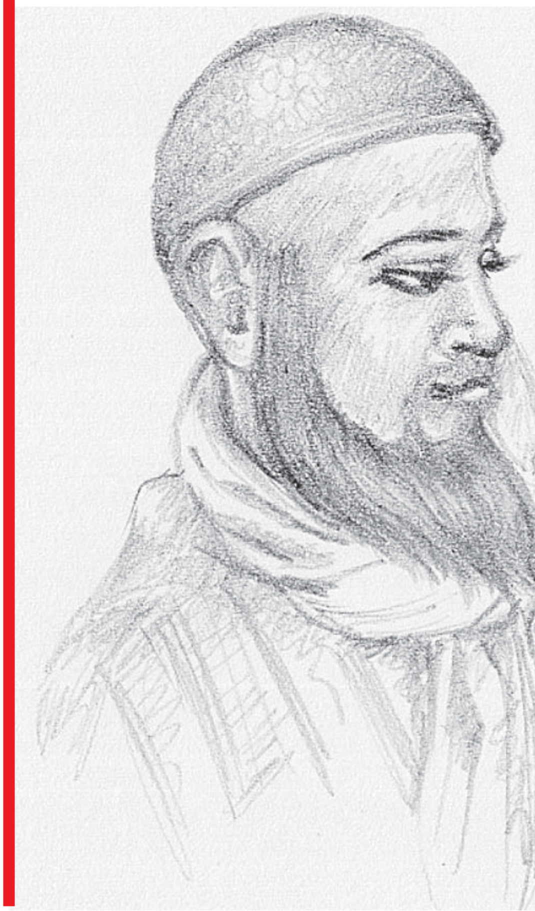
महान इतिहासकार सीताराम गोयल ने अपनी पुस्तक ''भारत में इस्लामी साम्राज्यवाद का इतिहास'' (नई दिल्लीः वॉयस ऑफ इंडिया) में इसकी प्रमाणिक समीक्षा की है। यदि हमें भारत को वैचारिक रूप से नीरोग, तथा विषैली राजनीति से सुरक्षित - इम्यून - बनाना हो, तो यह पुस्तक हमारे देश के प्रत्येक हाई-स्कूल छात्र, शिक्षक, प्रशासक, और नेता को अनिवार्यतः पढ़नी, पढ़ानी चाहिए! चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। केवल इस कार्य से भारत में नकली, सेक्यूलरवादी राजनीति ध्वस्त हो जाएगी। साथ ही, आगे हमारे विश्वविद्यालयों में भारत-द्रोही, हिन्दू-विरोधी, मूढ़ लफ्फाजों की नई खेप बननी लगभग बंद हो जाएगी! हमारे कर्णधार इसे आजमा कर देख सकते हैं।

जावेद अख्तर जैसे भ्रमित लोग केवल कुछ मोटी-मोटी बातें देखें। भारत में किसी पानीदार मुस्लिम शासक ने कोई भारतीय भाषा सीखना, बोलना गवारा नहीं किया। सिवा बिलकुल अंत में जब उनकी ताकत खत्म हो चुकी थी। यहाँ तमाम मुस्लिम शासन में अरबी, फारसी की सत्ता थी। जैसे ब्रिटिश-राज में अंग्रेजी की थी।

फिर, सारे सत्ता पद अरब, तुर्क, फारसी, और विदेशी मुस्लिमों के लिए सुरक्षित थे। यहाँ के (धर्मांतरित) मुसलमानों को भी नीचा मानकर बहुत निम्न-श्रेणी के काम दिए जाते थे। उच्च पद केवल बाहरी मुसलमानों के लिए सुरक्षित था। जैसे ब्रिटिश राज में केवल यूरोपियनों के लिए थे। अरब, फारस, तुर्की, मध्य एशिया, उत्तरी अफ्रीका, अबीसीनिया तक से आने वाला कोई मुस्लिम यहाँ कोई उच्च पद पा सकता था। चाहे वह कैसा भी घटिया, निपट अशिक्षित क्यों न हो। जैसे ब्रिटिश राज में कैसा भी यूरोपीय यहाँ विशिष्ट क्लबों का सदस्य हो जाता था।

फिर यहाँ मुगल शासक जो पोशाक पहनते थे, जो चीजें खाते-पीते थे, जिस तरह के शौक पालते थे, पकड़ कर लाए सुंदर लड़के-लड़कियों का मोल लगाते थे, और जिन तौर-तरीकों से चलते थे, उस में कोई भारतीयता नहीं थी। वे भारत के लिए ब्रिटिश शासकों जैसे ही पूर्णतः विजातीय थे।

वस्तुतः, कई मामलों में यहां मुस्लिम शासकों की तुलना में ब्रिटिश अधिक उदार थे। सभी मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं का बलात धर्मांतरण कराया, मंदिर तोड़े, हिन्दू भावनाओं एवं संस्थाओं को अपमानित किया। तमाम मुल्लों, सूफियों ने हिन्दू धर्म-संस्कृति की सदैव खिल्ली उड़ाई। हिन्दू धर्म-समाज-परंपराओं से खुली घृणा प्रकट की। इस्लामी



दावों या कानूनों के औचित्य पर एक शब्द भी संदेह करने वाले हिन्दू की जान को खतरा था। जबकि अंग्रेजों ने कभी हिन्दू मंदिरों को अपवित्र नहीं किया। न ही कभी हिन्दू धर्म-संस्कृति को अपमानित किया। उन्होंने ईसाई मिशनरियों को हिन्दुओं का बलात धर्मांतरण कराने की कभी इजाजत नहीं दी। हिन्दू लोग ईसाइयत के दावों पर खुले आम प्रश्न उठा सकते थे। उस पर अधिकांश ब्रिटिश प्रशासक कोई ध्यान तक नहीं देते थे।

फिर आगे देखें, तो हरेक मुस्लिम शासक, छोटा-मोटा ओहदेदार भी अपने हरम में चाहे जितनी हिन्दू स्त्रियां जबरन कहीं से उठा ले जाना अपना हक समझता था। हिन्दू लड़कियों, स्त्रियों को उन की गंदी नजरों से बचाने के लिए ही हिन्दुओं को कई नई रीतियां अपनानी पड़ी। जौहर की प्रथा उसी का एक रूप थी। वे मुस्लिम शासक, सरदार अनगिनत हिन्दू रखैलियाँ अलग से रख सकते थे। पर कोई हिन्दू लड़का किसी मुस्लिम लड़की से विवाह नहीं कर सकता था, चाहे वह हिन्दू से धर्मांतरित हुई मुस्लिम ही क्यों न हो। किसी



मुस्लिम स्त्री से प्रेम करने की सजा हिन्दू के लिए मौत थी। ऐसा कुछ भी ब्रिटिश राज में नहीं था। वे भारतीय स्त्रियों पर मनमाने हाथ नहीं डालते थे। ब्रिटिश स्त्रियों से भारतीय पुरुषों का विवाह भी नहीं रोकते थे, चाहे यह उन्हें पसंद न आता हो।

अतः भारत के मुसलमान शासक किसी हाल में देशी नहीं माने जा सकते। उन के वंशजों का यहीं रह जाना, या धर्मांतरित कराए गए मुसलमानों की दलीलें कुछ साबित नहीं करती। बल्कि जैसे तर्क जावेद अख्तर मुगलों के लिए देते हैं, वही तर्क भारतीय ईसाई भी दे सकते है। वे भी ब्रिटिशों को विदेशी शासक कहने पर आपत्ति कर सकते हैं। मुगलों द्वारा जिस तरह के भवनों, स्थानों के निर्माण का हवाला दिया जाता है, तो ब्रिटिशों से उन से सौ गुने बड़े, भव्य, और उपयोगी निर्माण किए कराए थे। अनेक सुंदर शहर बसाए थे।

दरअसल, भारत में मुस्लिम शासन अंधकार का युग था या खुशहाली का, इस का उत्तर इस पर निर्भर करेगा कि किस दृष्टि से देखा जा रहा है? इस्लामी नजरिए से वह जरूर शानदार जमाना था। एक ऐसे बड़े देश पर इस्लामी राज जो वैभव में अतुलनीय था। इस्लामी इतिहासकारों, उलेमा, और शासकों को इस का भारी गर्व था कि (1) लगातार जिहाद में लाखों काफिरों को जहन्नुम भेजा गया, (2) मूर्तिपूजा के हजारों मंदिर खत्म और खराब किए गए, (3) हजारों ब्राह्मणों, भिक्षुओं को मार डाला गया, और बचे हुए अनेकों को गो-मांस खिलाया गया, (4) भारी मात्रा में बहुमूल्य रत्नों-जवाहरात की लूट हुई और उसे प्रोफेट द्वारा बताए नियम से मुसलमानों में बांट लिया गया, (5) लाखों-लाख पुरुषों, स्त्रियों, और बच्चों को पकड़ कर दूर देशों में गुलाम, रखैलों के रूप में बेचा गया, (6) बड़ी आबादी पर सत्ता कायम कर उसे दासता में रखा गया, और (7) तलवार के जोर से शरीयत और इस्लामी किताबों का दबदबा बनाया गया।

यह सही है कि मुस्लिम शासकों ने अपने लिए अनेक विलासिता पूर्ण महल बनवाए। असंख्य मस्जिदें, मदरसे, और मरकज भी बनवाए। मिल्लत की ताकत बनाने को असंख्य मुल्लों को संरक्षण दिया। उन्होंने अपने और अपनी चुनी हुई बीवियों के लिए बगीचों से घिरी, हीरे-जवाहर से जड़ी बड़ी-बड़ी कब्रें बनवाई। अनेक खानकाह व दरगाहें बनवाईं, और उन्हें धन दिया। उसमें सूफी रहते, गाते, नाचते, और भाषण देते। यह सभी इमारतें अनेक इतिहास पुस्तकों में वर्णित हैं। उनकी तस्वीरें रोज पर्यटकों द्वारा खींची जाती हैं। वे ऐसी छाप छोड़ती हैं कि मुस्लिम शासन में भारत एक चमक-दमक वाली शानदार जगह थी। जिसकी दुहाई जावेद अख्तर दे रहे हैं।

उस वैभव में कुछ कलाएं, कारीगरी, पोशाक, केश-विन्यास, कलात्मक हस्तलेख, सजी पांडुलिपियाँ, फारसी गद्य-पद्य, कुरान व हदीस पर अरबी व्याख्याएं, दरबारी नृत्य-संगीत, तथा सूफियों के संवाद जोड़ दें। मुगल विरासत की ऐसी प्रदर्शनी में इन सब को इकट्ठे देख जरूर छाप पड़ेगी कि तब भारत खुशहाली का काल था।

मगर किस की खुशहाली? जहाँ तक काफिरों यानी हिन्दुओं की बात है तो वह एक घोर अंधकार का लंबा युग था। जो ऊपर गिने गए सात तथ्यों से साफ दिखता है। वह अंधकार तभी खत्म हुआ, जब 18वीं सदी में मराठों, जाटों, सिखों ने इस्लामी साम्राज्यवाद की कमर तोड़ दी। उस भयानक काल के असंख्य विवरण, बड़े गर्व से, बार-बार, और पूरे विस्तार से खुद मुस्लिम तारीखनवीसों ने लिखे हैं।

उदाहरण के लिए, मुस्लिम शासन में हिन्दुओं के हाल का वर्णन मशहूर 'तारीखे-वसाफ' के लेखक शराफउद्दीन शिराजी ने इन शब्दों में किया है, ''बुतपरस्ती को झुकाने और देवमूर्तियों को तोड़ने के लिए मजहबी सुरूर की रौ ऊंची फड़कती थी... इस्लाम के लिए मुहम्मदी फौजों ने उस नापाक जमीन पर बाएं-दाएं, बिना कोई मुरव्वत कत्ल करना शुरू किया। खून के फव्वारे छूटने लगे।

उन्होंने इस पैमाने पर सोना-चांदी लूटी जिसकी कल्पना नहीं हो सकती। भारी मात्रा में जवाहरात और तरह-तरह के कपड़े भी।... उन्होंने इतनी बड़ी संख्या में सुंदर और छरहरी लड़कियों, लड़कों और बच्चों को कब्जे में लिया, जिस का कलम वर्णन नहीं कर सकती।... संक्षेप में, मुहम्मदी फौजों ने देश को बिलकुल उजाड़ दिया और वहाँ के बाशिंदों की जिन्दगी तबाह कर दी, शहरों को लूटा, और उनके बच्चों पर कब्जा किया। अनेक मंदिर उजाड़ हो गए, देवमूर्तियाँ तोड़ डाली गईं और पैरों के नीचे रौंदी गईं, जिन में सब से बड़ा था सोमनाथ। उस के टुकड़े दिल्ली लाए गए और जामा-मस्जिद के रास्ते में उसे बिछा दिया गया ताकि लोग याद रखें और इस शानदार जीत का जिक्र करें ... दुनिया के मालिक, अल्लाह की शान बनी रहे।''

क्या इस विरासत पर किसी हिन्दू या किसी विवेकशील मुसलमान को भी गर्व होना चाहिए? तारिक फतह इस के उदाहरण हैं कि मानवतावादी मुसलमानों को भी ऐसी मतवादी सनक से निकलने का रास्ता खोजना होगा। पर उस सचाई की लीपापोती करके, उस के बदले में झूठी बातें बनाकर ताजमहल और फतेहपुर सीकरी की परेड से सबको बेवकूफ बनाने की कोशिश होती है। उसका लाभ किसी गाँधीवादी या राष्ट्रवादी को नहीं, बल्कि केवल कट्टर इस्लामियों को मिलता है। यह बात आज के हिन्दू राष्ट्रवादी भी नहीं समझ पा रहे हैं।

सच यह है कि भारत में इस्लामी ताकत व खुशहाली उसी अनुपात में बढ़ी जिस अनुपात में हिन्दुओं की दुर्गति, तबाही और मौत हुई। अतः हिन्दुओं के सामने मुगल काल के गीत गाना जले पर नमक छिड़कने समान है। या तो जावेद अख्तर को बचपन में कम्युनिस्ट पार्टी स्कूल में सुने हुए नकली इतिहास से

ज्यादा कुछ मालूम नहीं, या फिर वे तकिया (कपट) कर रहे हैं।

जावेद अख्तर द्वारा तारिक फतह पर हमले के बाद अनेक सेक्यूलर-वामपंथी, और रेडिकल युवा भारतीय इतिहास में मुस्लिम शासन के गीत गा रहे हैं। यह लंबे समय से इतिहास के व्यवस्थित मिथ्याकरण का ही कुफल है। जिन लोगों से यह सुधारने की अपेक्षा थी, वे खुद वैचारिक खस्ताहाल हैं। बड़े गर्व से कहते हैं कि ''हमने इतिहास की पढ़ाई में कोई परिवर्तन नहीं किया।'' यानी, वही झूठा, नकली इतिहास पढ़ाना, बल्कि उसे और भी फैलाना जारी रखा।

जबकि भारत में मुस्लिम शासन का वास्तविक इतिहास दिखाकर मुसलमानों के मानवतावादी वर्ग को भी नये चिंतन के लिए प्रेरित किया जा सकता था। कि अपनी इस्लामी विरासत पर पुनर्विचार करें। मुसलमानों में भी सच्चा, पूरा इतिहास न जानने के कारण विविध गलतफहमियां हैं। कुछ अपने को पीड़ित-प्रताड़ित समझते हैं, तो कुछ अपने को किसी श्रेष्ठ नस्ल का मानते हैं। दोनों ही बातें गलत हैं। भारत में इस्लामी शासन बना था, मगर वह अपने-आप खत्म नहीं हुआ। उसे हिन्दुओं ने लड़कर ही खत्म किया था। यह पूरी दुनिया में एक-दो स्थानों पर ही हो सका है। भारत उनमें से एक है। अतः हिन्दुओं को दुर्बल, लोभी बनिया, आदि मानने की गलतफहमी भी इतिहास के मिथ्याकरण के अंग हैं। फिर, सच्चे इतिहास की जानकारी होने पर यहां कम्युनिज्म जैसे हानिकर मतवादों में फंसे हिन्दू युवाओं को भी भटकने से रोका जा सकता था।

वस्तुतः जो बातें जावेद अख्तर कह रहे हैं, उन्हें चार दशक पहले बाकायदा आदेश देकर पढ़ाने का निर्देश दिया गया था। उसी की आलोचना में सीताराम गोयल ने उक्त पुस्तक ''भारत में इस्लामी साम्राज्यवाद का इतिहास'' लिखी थी। वह आज भी सामयिक है।

मुस्लिम शासन की लीपापोती में दी गई अन्य दलीलों की भी चर्चा कर लेना उपयोगी है। यद्यपि इन सभी बातों को जावेद अख्तर ने नहीं रखा है। फिर भी, दूसरे वामपंथी या राष्ट्रवादी तक ऐसी बातें जब-तब बोल देते हैं। उन में एक यह है कि यहाँ बहुतेरे लोग स्वेच्छा से मुसलमान बने थे। क्योंकि ब्राह्मणों ने निचली जातियों पर जुल्म किया था। जबकि किसी भी मुस्लिम या हिन्दू मूल स्रोतों में इस का एक भी उल्लेख नहीं मिलता। ऐसी दलीलों को बस एक घोषणा के रूप में रख कर सत्ता बल से प्रचारित कराया गया है। इसे न मानने वालों को बुरा-भला कहा जाता है। कई राष्ट्रवादी भी इसे दुहराकर अपने को 'समरसता' के पैरोकार मान लेते हैं। मुगलों के साथ-साथ ब्राह्मणों को बुरा-भला कह कर खुद उत्साहित होते हैं।

कुछ लोग सूफियों को भारतीय संस्कृति में मुस्लिम योगदान बताते हैं। पर अधिकांश सूफी कोई सज्जन-संत नहीं थे। जो सच्चे संत थे, उन पर पक्के इस्लामी उलेमा आज भी त्यौरी चढ़ाते हैं। वैसे सूफियों को शायर अल्लामा इकबाल ने भी बुरा-भला कहा है। ज्यादातर सूफी इस्लामी साम्राज्यवाद की आँख-कान थे। कबीर, नानक, तुलसी, सूर और मीरा जैसे संतों के उदय का भी मुस्लिम शासन से कोई सरोकार नहीं है।

दूसरा दावा है कि पहले भारत के लोग 'हिन्दू' थे ही नहीं। कम्युनिस्ट इतिहासकारों ने इसे फैलाने की कोशिश की है। यहां के लोगों के लिए 'हिन्दू' संज्ञा इस्लामी हमले के बाद प्रचलित हुई। लेकिन उससे बड़ा तथ्य है कि मुसलमानों के पहले भारत एक महान सभ्यता-संस्कृति थी। सनातन धर्म द्वारा पोषित संस्कृति। मुस्लिम हमलों ने हमें एक समुदाय में बदल दिया, जिससे अब अपना अस्तित्व बचाने के लिए आवाहन किया गया। अतः हमें 'हिन्दू' संज्ञा इसलिए स्वीकार करनी पड़ी, क्योंकि अब भारत में ऐसे लोग भी यहाँ आ गए जो सनातन धर्म के शत्रु थे। वही स्थिति आज भी है। सो, हमें अपनी कोई पहचान रखनी ही है, चाहे उस के लिए चुनी गई, या परिस्थितिवश लादी गई संज्ञा कितनी भी दोषपूर्ण हो। फिर, अब यह संज्ञा असंख्य हिन्दू योद्धाओं और महान नायकों के बलिदानों से गरिमामय बन चुकी है। उन्होंने धर्म और देश के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया।

अगली दलील है कि मुगलों ने भारत को एक किया। सत्य यह है कि भारतवर्ष के 'चक्रवर्ती-क्षेत्र' होने की धारणा महाभारत एवं पुराणों के काल से चलती आई है। यह परंपरा सम्राट समुद्रगुप्त तक भी पहचानी जा सकती है। यही नहीं, उस के बाद भी आदि शंकराचार्य ने भारतवर्ष में चार दिशाओं में चार धाम, और संपूर्ण भारत में चुन कर 108 विशिष्ट मंदिर स्वयं बनवाए। वे मंदिर हिमालय से लेकर केरल तक फैले हुए हैं। यह सब इस्लाम से पहले हो चुका था। अतः एक भारतवर्ष की धारणा यहां सदैव रही थी। वह काल-गति में कमजोर जरूर हुई, पर 1947 ई. तक जीवित थी, जब हमारे नेताओं ने देश-विभाजन करना मान लिया। इस्लामी हमलावरों को हमलों का ईनाम देना स्वीकार कर लिया।

परन्तु जैसा पाकिस्तान के हश्र से भी दिखता है, इस्लाम हमेशा केवल अपना गुलाम, एक समरूप, सैनिक किस्म का तानाशाही राज्य चाहता है। इस के विपरीत पारंपरिक भारत की साम्राज्य धारणा सनातन धर्म से अनुप्राणित थी। उस में स्वधर्म, स्थानीय परंपरा, संस्कृति के आधार पर स्वायत्तता और स्वराज का सुख लेने वाले बड़े-बड़े जनपदों का संघ होता था। अतः इस्लाम ने भारतीय एकता में कोई योगदान नहीं दिया। इस ने तो हमारी एकता के तंतुओं को गंभीर क्षति पहुंचाई। उसी ने हमें काट कर अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगलादेश, जैसे कई टुकड़े किए।

फिर, संपूर्ण भारत का 'साझा बाजार' बनने की बात तो पूंजीवादी-साम्राज्यवादी दलील है। जिस का अर्थ है कि देश के अंदरूनी भागों में रहने वाले सामान्य जन जो पैदा करते हैं, उस का उपभोग उन्हें करने की अनुमति नहीं। उन के श्रम, अध्यवसाय, और कौशल का फल हथिया कर महानगरों में रहने वाली परजीवी आबादी तक पहुँचाया जाता है। इस से भी बुरी बात यह है कि उन्हें ऊल-जुलूल चीजें पैदा करने के लिए प्रेरित किया जाता है। जबकि भारतीय संस्कृति में ऐसी अधिरचनाएं (इन्फ्रास्ट्रक्चर) थीं जिस में स्थानीय वस्तु, तकनीक, श्रम के उपयोग से स्थानीय जरूरतों की पूर्ति होती थी। उस से जो बच रहता था, वही अन्य उपयोगी वस्तुओं के बदले बाहर भेजा जाता था।

इस अधिरचना को मुस्लिम शासन ने अपनी सैन्य जरूरतों, ओहदेदारों और परजीवी दरबार के कारण कुछ हानि जरूर पहुंचाई। पर कुल मिलाकर वह बची रही। उसे तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अंदर तक घुसकर

लगभग खत्म कर डाला। अतः मुस्लिम शासन ने भारत में कोई साझा बाजार नहीं बनाया था। न ही इस ने पारंपरिक अधिरचना को बड़ी हानि पहुंचाई। कारण यह भी था कि इस्लामी किताबों व इतिहास में लूट-पाट, उस की आपसी बांट और भोग के सिवा किसी तंत्र की जानकारी नहीं है। चौदह सौ साल पहले की मुहम्मदी सीखों में किसी उत्पादन, उद्योग, कृषि या वाणिज्य की कोई बात नहीं मिलती है। उन सीखों के सिवा मुस्लिम जगत को कुछ जानने-समझने से मना भी किया गया था। उस का प्रमाण आज भी कुल मिलाकर पूरा मुस्लिम विश्व देता है। सो, भारत की पारंपरिक आर्थिकी को नुकसान न पहुंचाना ही मुगलों के लिए फायदेमंद था।

जावेद अख्तर ने मुगलकाल के दिल्ली-आगरा को लंदन-पेरिस से चमकदार बताया है। पर वे भूल जाते हैं, या उन्हें मालूम नहीं है कि कि 18वीं सदी के अंत तक भारत की तुलना में पूरा यूरोप कुछ था ही नहीं! वह तो एक निर्धन महाद्वीप था जो क्रिश्चियेनिटी के झंडे तले अपने बेकार लोगों, रफियनों की फौज बाहर लूट के लिए भेजता था।

अतः तुलना करनी हो, तो मुगलों के आगरा-दिल्ली की तुलना यहीं पहले के तंजौर, मदुरा, कांचीपुरम, कन्नौज, उज्जैन, वाराणसी और पाटलिपुत्र से कर के देखें। ये सभी यहाँ मुस्लिम राज से पहले के असली नगर थे। बल्कि मुगलों के समकालीन विजयनगर के सामने भी आगरा-दिल्ली बहुत छोटे लगेंगे। सो ये मुगलों की जगहें भारत के अनेक नगरों की तुलना में बड़ी मामूली थीं।

फिर, सभी मुस्लिम शहर घनी आबादी वाली गंदी बस्तियों का जाल थे। उसे देख कर पारंपरिक भारत के नगर-शिल्पियों के क्लासिक सौंदर्य-बोध को बड़ा धक्का लगा होता। उदाहरण के लिए, भारतवर्ष में मोहेनजोदारो की नगर रूप-रेखा सब से प्राचीन, और जयपुर सब से निकट के हिन्दू नमूने हैं। उस से देख सकते हैं कि यहाँ की अपनी नागर संस्कृति की कल्पना में कितने विस्तृत स्थल हुआ करते थे! उस के निमार्ता सनातन धर्म से अनुप्राणित अपने आंतर भाव के असीम से प्रेरणा पाते थे। जबकि दुनिया भर में मुस्लिम शहर प्रायः संकरी गंदी बस्तियों (घेट्टो) जैसे ही मिलते हैं। वे इस्लाम की संकीर्ण भावात्मकता, अलगाव, और आक्रामकता के ही भौतिक प्रतिरूप हैं। इसे भी स्वयं देखा जा सकता है।

कुछ लोग सूफियों को भारतीय संस्कृति में मुस्लिम योगदान बताते हैं। पर अधिकांश सूफी कोई सज्जन-संत नहीं थे। जो सच्चे संत थे, उन पर पक्के इस्लामी उलेमा आज भी त्यौरी चढ़ाते हैं। वैसे सूफियों को शायर अल्लामा इकबाल ने भी बुरा-भला कहा है। ज्यादातर सूफी इस्लामी साम्राज्यवाद की आंख-कान थे। कबीर, नानक, तुलसी, सूर और मीरा जैसे संतों के उदय का भी मुस्लिम शासन से कोई सरोकार नहीं है। वे इस्लाम के बावजूद हुए, क्योंकि कई कारणों से उन्हें इस्लाम खत्म न कर सका। कबीर और नानक ने साफ शब्दों में इस्लाम की बुराइयां बताई हैं। तुलसी, मीरा और सूरदास ने तो इस्लाम का उल्लेख तक नहीं किया। इसे उन्होंने इस लायक नहीं समझा था।

फिर, रहीम एवं तुलसी अकबर के परवर्ती दौर में बढ़े, जिसने भारत में इस्लामी राज्य का ढांचा समेट दिया था। उसने हिन्दुओं से संधि कर ली। धीरे-धीरे खुद भी इस्लाम से किनारा करना शुरू किया। उसके द्वारा नया धर्म 'दीने-इलाही' चलाना वही चीज थी। यह 'दीने-मुहम्मद' को ठुकराने जैसा ही था। इसीलिए भारत में जावेद अख्तर जिस प्रगतिशील अकबर का नाम बार-बार लेते हैं, उस से पाकिस्तान में साफ घृणा की जाती है। क्योंकि वे अकबर की इस्लाम से बढ़ती दूरी का अर्थ समझते हैं। अतः जिस अकबर पर जावेद को गर्व है, उसकी खूबी का एक बड़ा कारण बाद में हिन्दू धर्म से उस की निकटता भी है।

फिर, छः सौ साल में दर्जनों मुस्लिम शासकों में बस एक अकबर का नाम लेकर 'सामासिक संस्कृति' और 'सामंजस्य' की कहानी गढ़ना भी असलियत दशार्ता है। यह असलियत कि बाकी के दर्जनों मुस्लिम सुल्तानों, शासकों, ने जो किया, उस में दिखाने लायक कुछ भी नहीं है!

मुस्लिम शासन की लीपापोती में दी गई अन्य दलीलों की भी चर्चा कर लेना उपयोगी है। यद्यपि इन सभी बातों को जावेद अख्तर ने नहीं रखा है। फिर भी, दूसरे वामपंथी या राष्ट्रवादी तक ऐसी बातें जब-तब बोल देते हैं। उन में एक यह है कि यहाँ बहुतेरे लोग स्वेच्छा से मुसलमान बने थे। क्योंकि ब्राह्मणों ने निचली जातियों पर जुल्म किया था। जबकि किसी भी मुस्लिम या हिन्दू मूल स्रोतों में इस का एक भी उल्लेख नहीं मिलता।

इसका कारण यही है कि यहां मुस्लिम शासकों का शासन मुख्यतः इस्लामी 'कानून' से चलता था। लेकिन वह भारत में कभी सार्वभौम, स्वीकार्य नहीं हो सका। इसीलिए मुगल राज में भी दिख सकने वाली तमाम उपलब्धियां मुख्यतः हिन्दू देन थीं। उद्योग-व्यापार, कला-संगीत, साहित्य, सब कुछ। इस का प्रमाण यह भी है कि जिन असंख्य देशों में इस्लामी 'कानून' सार्वभौम बन गया, वहाँ कितने यहूदी, क्रिश्चियन, बौद्ध कवि, संत, कलाकार फले-फूले? खोज कर देखें कि कौन से तानसेन, रहीम, मीर, गालिब या साहिर, रफी, बिस्मिल्ला खां, नौशाद, जैसे नमूने अरब के इस्लामी इतिहास में मिलते हैं?

अतः भारत में अंग्रेजों के आने तक की आर्थिक-व्यापारिक उपलब्धियां अथवा महान मुस्लिम कवि, कलाकार, संत, आदि सभी विशुद्ध हिन्दू देन या हिन्दू प्रभाव की देन हैं। यही आज भी सच है। वरना जावेद अख्तर जैसे लोग पाकिस्तान में बच नहीं सकते। उन्हें तारिक फतेह की तरह बाहर शरण लेनी पड़ती है। अतः जावेद जैसे सभी लोग, जो भारत में हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव की वास्तविक चिन्ता करते हैं, उन्हें इतिहास को बेबाक रूप से जानना चाहिए। उसे सामने रखकर तमाम हिन्दू-मुसलमानों को उस पर विवेक से विचार करने का आग्रह करना चाहिए।

सीताराम गोयल के अनुसार, इस के बाद दोनों समुदायों के लोग स्वयं मानवीय सामंजस्य का स्थाई उपाय खोज निकालेंगे।

इतिहास की लीपापोती ने केवल संदेह, अविश्वास, और गलतफहमियां ही बढ़ाई हैं। अभी तारिक फतेह और जावेद अख्तर के बीच उभरा विवाद उसी का एक ताजा उदाहरण है। अच्छा हो, कि हम अपने राष्ट्रीय ध्येय-वाक्य 'सत्यमेव जयते' पर सचमुच विश्वास करना सीखें। उस आधार पर चल कर देखें। हमारी सदियों की सांप्रदायिक समस्या का समाधान उस से संभव है। किसी छल, प्रपंच, बनावटीपन में वह सामर्थ्य नहीं है। चाहे कितना ही बड़ा नेता या संगठन वह कर रहा हो।

भारत में मुस्लिम शासन: एक बहस

तारिक फतह बनाम जावेद अख्तर

डॉ. शंकर शरण

भाग १

जावेद अख्तर का मुगलिया रंग

दि. ५ मई २०२०, www.nayaindia.com

फिल्मी हस्ती जावेद अख्तर भारत में मुगल शासन को "खुशहाली का समय" मानते हैं। तुलना करते हुए वे अकबर, जहाँगीर को महान और अंग्रेजों को गया-गुजरा बताते हैं। मुख्यतः इसी मतभेद पर वे तारिक फतह को हिन्दू सांप्रदायिकों का 'प्रवक्ता' कहते हुए जलील कर रहे हैं। वस्तुतः मुगल काल को गौरव-काल बताना लंबे समय से चल रहा है। यह स्वतंत्र भारत में अधिक प्रचारित हुआ। कांग्रेस-कम्युनिस्ट सत्ता गँठजोड़ ने राजकीय बल से इसे स्कूल-कॉलेजों तक फैला दिया। हमारे नेताओं ने सच दबाने और झूठ फैलाने का गंदा काम किया, करवाया हैं। इसी का दूरगामी असर अब हर कहीं दिखता है।

सचाई यह है कि भारत में मुगल शासन भी ब्रिटिश शासन जैसा "विदेशी" था। कई मामलों में ब्रिटिश राज से अधिक क्रूर और घृणित। स्वयं मुगलों के समय लिखी गई सैकड़ों किताबें, दस्तावेज इस की गवाही हैं। महान इतिहासकार सीताराम गोयल ने अपनी पुस्तक "भारत में इस्लामी साम्राज्यवाद का इतिहास" (नई दिल्ली: वॉयस ऑफ इंडिया) में इस की प्रमाणिक समीक्षा की है। यदि भारत को वैचारिक रूप से नीरोग, तथा

विषैली राजनीति से सुरक्षित, इम्यून बनाना हो तो यह पुस्तक प्रत्येक हाई-स्कूल छात्र, शिक्षक, प्रशासक, और नेता को अनिवार्यतः पढ़नी, पढ़ानी चाहिए! इस से भारत में आगे देश-द्रोही, हिन्दू-विरोधी, लफ्फाजों की नई खेप बननी बंदप्राय हो जाएगी!

आइए, केवल कुछ मोटी-मोटी बातें देखें। भारत में किसी ताकतवर मुस्लिम शासक ने कोई भारतीय भाषा सीखना, बोलना गवारा नहीं किया। सिवा बिलकुल अंत में जब उन की ताकत खत्म हो चुकी थी। तमाम मुस्लिम शासन में अरबी, फारसी की सत्ता थी, जैसे ब्रिटिश-राज में अंग्रेजी की थी। फिर, सारे सत्ता पद अरब, तुर्क, फारसी, और विदेशी मुस्लिमों के लिए सुरक्षित थे। जैसे ब्रिटिश राज में यूरोपियनों के लिए थे। अरब, फारस, मध्य एसिया, अबीसीनिया तक से आने वाला कोई मुस्लिम यहाँ कोई उच्च पद पा सकता था। चाहे वह कैसा भी घटिया, निपट अशिक्षित क्यों न हो। जैसे ब्रिटिश राज में कैसा भी यूरोपीय यहाँ विशिष्ट क्लबों का सदस्य हो जाता था। मुगल शासक जो पहनते थे, खाते-पीते थे, जैसे शौक पालते थे, सुंदर लड़के-लड़कियों का मोल लगाते थे, जिन तौर-तरीकों से चलते थे, उस में भारतीयता शून्य थी। वे ब्रिटिश शासकों जैसे ही पूर्णतः विजातीय थे।

वस्तुतः, कई मामलों में यहाँ मुस्लिम शासकों की तुलना में ब्रिटिश अधिक उदार थे। सभी मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं का बलात् धर्मांतरण कराया, मंदिर तोड़े, हिन्दू भावनाओं एवं संस्थाओं को अपमानित किया। तमाम मुल्लों, सूफियों ने हिन्दू धर्म-संस्कृति की खिल्ली उड़ाई। उस से खुली घृणा प्रकट की। इस्लामी दावों या कानूनों के औचित्य पर एक शब्द भी संदेह करने वाले हिन्दू की जान को खतरा था, जबकि अंग्रेजों ने कभी हिन्दू मंदिरों को अपवित्र नहीं किया। न ही कभी हिन्दू धर्म-संस्कृति को अपमानित किया। उन्होंने ईसाई मिशनरियों को हिन्दुओं का बलात् धर्मांतरण कराने की कभी इजाजत नहीं दी। हिन्दू लोग ईसाइयत के दावों

पर खुले आम प्रश्न उठा सकते थे। उस पर अधिकांश ब्रिटिश प्रशासक कोई ध्यान तक नहीं देते थे।

आगे देखें, तो हरेक मुस्लिम शासक, छोटा ओहदेदार भी अपने हरम में चाहे जितनी हिन्दू स्त्रियाँ जबरन उठा ले जाना अपना हक समझता था। अनगिन हिन्दू रखैलियाँ अलग से रख सकता था। पर कोई हिन्दू लड़का किसी मुस्लिम लड़की से विवाह नहीं कर सकता था, चाहे वह हिन्दू से धर्मांतरित हुई मुस्लिम ही क्यों न हो। किसी मुस्लिम स्त्री से हिन्दू के प्रेम करने की सजा मौत थी। ऐसा कुछ ब्रिटिश राज में न था। वे भारतीय स्त्रियों पर हाथ नहीं डालते थे। ब्रिटिश स्त्रियों से भारतीयों पुरुषों का विवाह भी होता था।

अतः भारत के मुसलमान शासक किसी हाल में "देशी" नहीं माने जा सकते। उनके वंशजों का यहीं रह जाना, या धर्मांतरित कराए गए मुसलमानों की दलीलें कुछ साबित नहीं करती। जैसे तर्क जावेद अख्तर मुगलों के लिए देते हैं, वही तर्क भारतीय ईसाई भी दे सकते है। ब्रिटिशों को विदेशी शासक कहने पर आपत्ति कर सकते हैं।

भारत में मुस्लिम शासन अंधकार का युग था या खुशहाली का, इस का उत्तर इस पर निर्भर करेगा कि किस दृष्टि से देखा जा रहा है। इस्लामी नजरिए से वह जरूर शानदार जमाना था। एक ऐसे बड़े देश पर इस्लामी राज जो वैभव में अतुलनीय था। इस्लाम को इस का भारी गर्व था कि 1. लगातार जिहाद में लाखों काफिरों को जहन्नुम भेजा गया, 2. मूर्तिपूजा के हजारों मंदिर खत्म और खराब किए गए, 3. हजारों ब्राह्मणों, भिक्षुओं को मार डाला गया, और बहुतों को गो-मांस खिलाया गया, 4. भारी मात्रा में बहुमूल्य रत्नों की लूट हुई और उसे प्रोफेट द्वारा बताए नियम से मुसलमानों में बाँटा गया, 5. लाखों-लाख पुरुषों, स्त्रियों, और बच्चों को पकड़ कर दूर देशों में गुलाम, रखैलों के रूप में बेचा गया, 6. बड़ी आबादी पर सत्ता

कायम कर उसे दासता में रखा गया, और 7. तलवार के जोर से इस्लामी किताबों का दबदबा बनाया गया।

यह सही है कि मुस्लिम शासकों ने अपने लिए विलासिता पूर्ण महल बनवाए, अनेक मस्जिदें, मरकज, मदरसे भी बनवाए, मिल्लत की ताकत बनाने को असंख्य मुल्लों को संरक्षण दिया, अपने और अपनी चुनी हुई बीवियों के लिए बगीचों से घिरी, हीरे-जवाहर से जड़ी बड़ी-बड़ी कब्रें बनवाई, अनेक खानकाह व दरगाहें बनवाईं और उन्हें धन दिया। उस में सूफी रहते, गाते, और भाषण देते। यह सभी इमारतें अनेक इतिहास पुस्तकों में वर्णित हैं। उन की तस्वीरें रोज पर्यटकों द्वारा खींची जाती हैं। वे ऐसी छाप छोड़ती हैं कि मुस्लिम शासन में भारत चमक-दमक वाली जगह थी।

उस वैभव में कुछ कलाएं, कारीगरी, पोशाक, केश-विन्यास, कलात्मक हस्तलेख और सजी पांडुलिपियाँ, फारसी पद्य-गद्य, कुरान व हदीस पर अरबी व्याख्याएं, दरबारी संगीत और नृत्य, तथा संतों-सूफियों के संवाद जोड़ दें। मुगल विरासत की ऐसी प्रदर्शनी में इन सब को इकट्ठे देख जरूर छाप पड़ेगी कि तब भारत खुशहाली का काल था। मगर किस की खुशहाली? जहाँ तक काफिरों (हिन्दुओं) की बात है, तो वह घोर अंधकार का लंबा युग था। वह तभी खत्म हुआ जब 18वीं सदी में मराठों, जाटों, सिखों ने इस्लामी साम्राज्यवाद की कमर तोड़ दी।

मुस्लिम शासन में हिन्दुओं के हाल का वर्णन मशहूर 'तारीखे-वसाफ' के लेखक शराफउद्दीन शिराजी ने इन शब्दों में किया है, ''बुतपरस्ती को झुकाने और देवमूर्तियों को तोड़ने के लिए मजहबी सुरूर की रौ ऊँची फड़कती थी... इस्लाम के लिए मुहम्मदी फौजों ने उस नापाक जमीन पर बाएं-दाएं, बिना कोई मुरव्वत कत्ल करना शुरू किया। खून के फव्वारे छूटने लगे। उन्होंने इस पैमाने पर सोना-चाँदी लूटी जिस की कल्पना नहीं हो सकती। भारी मात्रा में जवाहरात और तरह-तरह के कपड़े भी।... उन्होंने इतनी बड़ी संख्या में सुंदर और छरहरी लड़कियों, लड़कों और बच्चों को कब्जे में

लिया, जिस का कलम वर्णन नहीं कर सकती।... संक्षेप में, मुहम्मदी फौजों ने देश को बिलकुल उजाड़ दिया और वहाँ के बाशिंदों की जिन्दगी तबाह कर दी, शहरों को लूटा, और उन के बच्चों पर कब्जा किया। अनेक मंदिर उजाड़ हो गए, देवमूर्तियाँ तोड़ डाली गईं और पैरों के नीचे रौंदी गईं, जिन में सब से बड़ा था सोमनाथ। उस के टुकड़े दिल्ली लाए गए और जामा-मस्जिद के रास्ते में उसे बिछा दिया गया ताकि लोग याद रखें और इस शानदार जीत का जिक्र करें ... सारी दुनिया के मालिक, अल्लाह की शान बनी रहे।"

पर यह सब छिपा कर ताजमहल और फतेहपुर सीकरी की परेड से हमें बेवकूफ बनाने की कोशिश होती है। भारत में इस्लामी ताकत व खुशहाली उसी अनुपात में बढ़ी जिस अनुपात में हिन्दुओं की दुर्गति, तबाही और मौत हुई। यह जले पर नमक छिड़कने समान है। या तो जावेद अख्तर को कम्युनिस्ट पार्टी स्कूल में सुने हुए से आगे कुछ इतिहास मालूम नहीं, या फिर वे तकिया (कपट) कर रहे हैं।

भाग २

मुस्लिम शासन का मूल्यांकन

दि. ७ मई २०२०, www.nayaindia.com

तारिक फतह पर जावेद अख्तर के हमले के बाद अनेक लोग भारतीय इतिहास में मुस्लिम शासन के गीत गा रहे हैं। यह यहाँ लंबे समय से इतिहास के व्यवस्थित मिथ्याकरण का ही कुफल है। जिन से यह सुधारने की अपेक्षा थी, वे खुद वैचारिक खस्ताहाल हैं। वरना मुस्लिम सत्ताओं का इतिहास दिखाकर मुसलमानों के मानवतावादी वर्ग को मुख्यधारा में रखा जा सकता था। उसी से कम्युनिज्म जैसे मतवादों में फँसे हिन्दू युवाओं को भी भटकने से रोका जा सकता था।

वस्तुतः जो बात जावेद कह रहे हैं, उसे चार दशक पहले बाकायदा आदेश देकर पढ़ाने का निर्देश दिया गया था। उसी की आलोचना में सीताराम गोयल ने ''भारत में इस्लामी साम्राज्यवाद का इतिहास'' लिखी थी, जो आज भी सामयिक है। बहरहाल, मुस्लिम शासन की लीपापोती में दी गई दलीलों में एक यह है कि यहाँ लोग स्वेच्छा से मुसलमान बने थे। जबकि मूल स्त्रोतों में इस का एक भी उल्लेख नहीं मिलता। इसे बस एक घोषणा के रूप में रख कर सत्ता बल से प्रचारित कराया गया है। इसे न मानने वालों को बुरा-भला कहा जाता है। दूसरा दावा है कि पहले भारत के लोग 'हिन्दू' थे ही नहीं; यह संज्ञा तो इस्लामी हमले के बाद प्रचलित हुई। लेकिन उस से बड़ा तथ्य है कि मुसलमानों के पहले भारत एक महान सभ्यता-संस्कृति थी। सनातन धर्म द्वारा पोषित संस्कृति। मुस्लिम हमलों ने हमें एक समुदाय में बदल दिया, जिस से अब अपना अस्तित्व बचाने के लिए आवाहन किया गया। अतः हमें 'हिन्दू' संज्ञा इसलिए स्वीकार करनी पड़ी क्योंकि अब ऐसे लोग भी यहाँ आ जमे थे जो सनातन धर्म के शत्रु थे। सो हमें अपनी कोई पहचान रखनी ही है, चाहे उस के लिए चुनी गई, या परिस्थितिवश लादी गई संज्ञा कितनी भी दोषपूर्ण हो। फिर, अब यह संज्ञा असंख्य हिन्दू योद्धाओं और महान नायकों से गरिमामय बन चुकी है। उन्होंने धर्म और देश के लिए अपना बलिदान दिया।

तीसरी दलील है कि मुगलों ने भारत को एक किया। जबकि भारतवर्ष के 'चक्रवर्ती-क्षेत्र' होने की धारणा महाभारत एवं पुराणों से चलती आई है। यह परंपरा सम्राट समुद्रगुप्त तक स्पष्ट मिलती है। फिर आदि शंकराचार्य ने संपूर्ण भारत में चार दिशाओं में चार धाम और संपूर्ण भारत में चुन कर 108 मंदिर बनाए। वे हिमालय से लेकर केरल तक फैले हुए हैं। यह भी इस्लाम से पहले हो चुका था। अतः एक भारतवर्ष की धारणा काल-गति में कमजोर जरूर हुई, पर वह 1947 ई. तक जीवित थी, जब हमारे नेताओं ने देश-विभाजन मान लिया। इस्लामी हमलावरों को हमलों का ईनाम देना

स्वीकार कर लिया। पर जैसा पाकिस्तान के हृश्र से भी दिखता है, इस्लाम हमेशा अपना गुलाम, एक समरूप, सैनिक राज्य चाहता है, जबकि साम्राज्य की भारतीय धारणा सनातन धर्म से अनुप्राणित थी। उस में स्वधर्म, स्थानीय परंपरा, संस्कृति के आधार पर स्वायत्तता, स्वराज का सुख लेते बड़े-बड़े जनपदों का संघ होता था। सो इस्लाम ने एकता में कोई योगदान नहीं दिया। इस ने तो हमारी एकता के तंतुओं को गंभीर क्षति पहुँचाई। उसी ने हमें काट कर अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगलादेश, जैसे टुकड़े किए।

संपूर्ण भारत का 'साझा बाजार' बनने की बात तो पूँजीवादी-साम्राज्यवादी दलील है। जिस का अर्थ है कि देश के अंदरूनी भागों में रहने वाले सामान्य जन जो पैदा करते हैं, उस का उपभोग उन्हें करने की अनुमति नहीं। उन के श्रम, अध्यवसाय, और कौशल का फल हथिया कर महानगरों में रहने वाली परजीवी आबादी तक पहुँचाया जाता है। जबकि भारतीय संस्कृति में ऐसी अधिरचनाएं (इन्फ्रास्ट्रक्चर) थीं जिस में स्थानीय वस्तु, तकनीक, श्रम के उपयोग से स्थानीय जरूरतों की पूर्ति होती थी। उस से जो बचता था वही अन्य उपयोगी वस्तुओं के बदले बाहर भेजा जाता था। इस अधिरचना को मुस्लिम शासन ने अपनी सैन्य जरूरतों और परजीवी दरबार के कारण कुछ हानि पहुँचाई। पर कुल मिलाकर वह बची रही। उसे तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अंदर तक घुसकर लगभग खत्म कर डाला। अतः मुस्लिम शासन ने साझा बाजार नहीं बनाया, न इस ने पारंपरिक अधिरचना को बड़ी हानि पहुँचाई। कारण यह भी था कि इस्लामी किताबों व इतिहास में लूट-पाट, उस की आपसी बाँट और भोग के सिवा किसी तंत्र की जानकारी नहीं है। इसलिए यहाँ पारंपरिक आर्थिकी को नुकसान न पहुँचाना ही मुगलों के लिए फायदेमंद था।

जावेद जैसे लोग मुगलकाल के दिल्ली-आगरा को लंदन-पेरिस से चमकदार बताते हैं। वे भूल जाते हैं कि 18वीं सदी के अंत तक भारत की तुलना में पूरा यूरोप कुछ था ही नहीं! वह तो एक निर्धन महाद्वीप था जो

क्रिश्चियेनिटी के झंडे तले अपने बेकार लोगों, रफियनों की फौज बाहर लूट के लिए भेजता था। अतः तुलना करनी हो, तो मुगल आगरा-दिल्ली की तुलना पहले के तंजौर, मदुरा, कांचीपुरम, कन्नौज, उज्जैन, वाराणसी, और पाटलिपुत्र से करें। ये सब मुस्लिम राज से पहले के नगर थे। बल्कि समकालीन विजयनगर की बनिस्पत भी आगरा-दिल्ली छोटे लगेंगे। सो मुगल राजधानियाँ भारत के अनेक नगरों की तुलना में बड़ी क्षुद्र थीं।

फिर, सभी मुस्लिम शहर घनी आबादी वाली गंदी बस्तियों का जाल थे। उसे देख कर पारंपरिक भारत के नगर-शिल्पियों के क्लासिक सौंदर्य-बोध को धक्का लगता। मोहेनजोदारो की नगर रूप-रेखा सब से प्राचीन, और जयपुर सब से निकट के हिन्दू नमूने हैं। उस से देखें कि यहाँ नागर संस्कृति की कल्पना में कितने विस्तृत स्थल हुआ करते थे! उस के निर्माता अपने आंतर भाव के असीम से प्रेरणा पाते थे। जबकि दुनिया भर में मुस्लिम शहर प्रायः संकरी गंदी बस्तियों (घेट्टो) से लगते हैं। इस्लाम की संकीर्ण भावात्मकता, अलगाव, और आक्रामकता के ही भौतिक प्रतिरूप।

कुछ लोग सूफियों को भारतीय सस्कृति में मुस्लिम योगदान बताते हैं, पर अधिकांश सूफी कोई सज्जन-संत नहीं थे। जो सच्चे संत थे, उन पर पक्के इस्लामी आज भी त्यौरी चढ़ाते हैं। वैसे सूफियों को अल्लामा इकबाल ने बुरा-भला कहा है। ज्यादातर सूफी इस्लामी साम्राज्यवाद की आँख-कान थे। कबीर, नानक, तुलसी, सूर और मीरा जैसे संतों के उदय का भी मुस्लिम शासन से कोई सरोकार नहीं है। वे इस्लाम के बावजूद हुए, क्योंकि कई कारणों से उन्हें इस्लाम खत्म न कर सका। कबीर और नानक ने साफ शब्दों में इस्लाम की बुराइयाँ बताई हैं। तुलसी, मीरा और सूरदास ने तो इस्लाम का उल्लेख तक नहीं किया। इसे उन्होंने इस लायक नहीं समझा था।

फिर, रहीम एवं तुलसी अकबर के परवर्ती दौर में बढ़े जिस ने भारत में इस्लामी राज्य का ढाँचा समेट दिया था। उस ने हिन्दुओं से संधि कर ली। धीरे-धीरे खुद भी इस्लाम से किनारा करना शुरू किया। उस के द्वारा नया

धर्म 'दीने-इलाही' चलाना वही चीज थी। यह 'दीने-मुहम्मद' को ठुकराने जैसा ही था। इसीलिए भारत में जावेद जैसे प्रगतिशील अकबर के गीत गाते हैं, पर पाकिस्तान में अकबर से घृणा की जाती है। फिर, छः सौ साल में दर्जनों मुस्लिम शासकों में बस एक अकबर का नाम लेकर 'सामासिक संस्कृति' की नारेबाजी भी असलियत दर्शाती है कि बाकी मुस्लिमों ने जो किया, उस में दिखाने लायक कुछ नहीं है!

यहाँ विभिन्न मुस्लिम शासकों का शासन मुख्यतः इस्लामी 'कानून' से चलता था। लेकिन वह भारत को कभी स्वीकार्य न हुआ। इसीलिए मुगल राज में भी तमाम उपलब्धियाँ मुख्यतः हिन्दू देन थी। उद्योग-व्यापार, कला-संगीत, साहित्य। इस का प्रमाण यह भी है कि जिन असंख्य देशों में इस्लामी 'कानून' सार्वभौम बन गया, वहाँ कितने यहूदी, क्रिश्चियन, बौद्ध कवि, संत फले-फूले? कौन से तानसेन, रहीम, मीर, गालिब या रफी, नौशाद अरब के इस्लामी इतिहास में मिलते हैं? अतः भारत में महान मुस्लिम कवि, कलाकार विशुद्ध हिन्दू प्रभाव की देन हैं। यही आज भी सच है। वरना जावेद अख्तर जैसे लोग पाकिस्तान में बच नहीं सकते। उन्हें तारिक फतेह की तरह बाहर शरण लेनी पड़ती है। फिर भी, जावेद सीनाजोरी पर आमादा हैं। उन्हें विवेक की आँखों से सचाई देखनी चाहिए।